सम्पूर्ण सालासर बालाजी का इतिहास

आज से लगभग पाँच सौ वर्षों पूर्व स्थानीय गण्डासों की ढाणी में भीषण पेयजल का संकट उत्पन्न हुआ था। सारे ग्रामवासी त्राहि-त्राहि कर रहे थे। इस संकट की घड़ी में उक्त ग्राम में एक साधु का आगमन हुआ। ग्रामवासी के आग्रह पर उन्होंने सूंघकर बताया कि यह स्थान पेयजल के लिये सर्वथा उपयुक्त है, किन्तु इस स्थान पर बनने वाला कुआँ एक जीवित व्यक्ति की बलि चाहता है, अर्थात् इस कुएँ को जो भी व्यक्ति खोदेगा, वही व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होगा। उक्त संन्यासी की ऐसी वाणी सुनकर ग्रामवासियों ने मन में विचार किया कि जान देने से अच्छा यही है कि हम और कहीं से पानी लायें और अन्त में उन सभी ने कुआँ न खोदने का निश्चय किया। इस समय के वर्तमान स्थानीय पुजारियों के पूर्वज श्री मोटारामजी ने मन में संकल्प किया कि यदि एक व्यक्ति के बलिदान से बाकी सभी को जल की सुविधा प्राप्त हो तो मैं स्वयं अपने प्राणों की बलि दूँगा। ग्रामवासियों के बहुत मना करने के पश्चात् भी उन्होंने कुआँ खोदने का कार्य प्रारम्भ किया। प्राप्त जानकारी के अनुसार उदर-शूल की प्राणघातक पीड़ा से तत्काल उनकी मृत्यु हो गई।

नागोर के खाम्याद ग्राम में श्री मोटारामजी की धर्मपत्नी श्रीमती मोला देवी दही बिलो रही थीं कि उनकी सुहाग की निशानी हाथों की चूड़ियाँ चटक गयीं। उनकी अन्तरात्मा को सत्यता का भान हो गया। उन्होंने अपनी माँ से कहा कि मेरे पतिदेव का स्वर्गवास हो गया है। मैं ससुराल जाऊँगी। इतना कहते हुए वे अपने घर से निकल पड़ीं। सालासर पहुँचकर अपने पति पंडित मोटारामजी के पार्थिव शरीर सहित शक्ति में विलीन हो गईं। इस

दौरान स्थानीय ग्रामवासियों द्वारा उनसे कई प्रश्नोत्तर हुये तब श्रीमती मोलादेवी ने अपने परिवार वालों को इस कुएँ का जल नहीं पीने का आदेश देते हुए कहा कि तुम लोगों को गण्डास शाखा के जाट जल पिलायेंगे, अगर वे जल नहीं पिलायेंगे तो उनका वंश नष्ट हो जायेगा।

इसी के कुछ वर्षों के पश्चात् सती के उक्त आदेश की अवमानना करने के कारण एवं जल भरकर लाने को अस्वीकार करने पर इस शाखा के यहाँ पर बसे सारे गण्डास जाट समूल नष्ट हो गये और उनके स्थान पर तैतरवाल शाखा के जाट रहने लगे। इसी कारण से इसे तैतरवालों की ढाणी अर्थात् छोटा गाँव के नाम से प्रसिद्धि मिली। उक्त जाटों ने बीच गाँव में एक अन्य कुआँ निर्मित किया, जिसे इस समय गाँवाई कुआँ के नाम से पुकारा जाता है।

आज से लगभग तीन सौ दस वर्ष पूर्व रावजी के शेखावत पूर्णपुरा में रहने लगे जिसे पूर्व में गुगराणा गाँव कहते थे। शेखावतजी सीकर के रेवासा ग्राम से आये थे।

गुगराणा ग्राम के ठाकुर बनवारीदासजी नौरंगसर (चूरू) में आकर रहने लगे। उनके पुत्र तुलछीरामजी के चार पुत्र थे, जिसमें सालमसिंह सबसे बड़े थे। ये चारों भाई चार स्थानों में अलग-अलग रहते थे, जिनके नाम क्रमशः नौरंगसर, तिड़ोकी, जुलियासर तथा सालमसर हैं। ठाकुर सालमसिंह के उक्त स्थान पर निवास करने पर तैतरवालों की ढाणी को ही 'सालमसर' नाम से जाना जाने लगा और कालान्तर में सालमसर का परिवर्तित नाम ही 'सालासर' है। इसी ग्राम में पं. सुखरामजी निवास करते थे। इनके पूर्वज रेवासा ठाकुर के यहाँ धान कूँतने (अंकन) का कार्य करते थे और इसी के साथ ही पौरोहित्य कार्य भी सम्पन्न कराते थे। इनका

विवाह सीकर के रूल्याणी ग्राम के रहने वाले पं. लच्छीरामजी पाटोदिया की आत्मजा कान्ही देवी के साथ सम्पन्न हुआ। कुछ ही वर्षों में अच्छा सम्मान, धन एवं पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। ये परिवार सहित सुखपूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे। ठाकुर सालमसिंह जब यहाँ आये तो उनकी पं. सुखरामजी से आत्मीयता हो गई, किन्तु भाग्य की विडम्बना पंडित सुखरामजी का पुत्र जब शिशुकाल में था, तब पंडितजी का स्वर्गवास हो गया। उस वक्त उनका प्राणप्यारा पुत्र मात्र 5 वर्ष की उम्र का था। रूल्याणी ग्राम से पं. लच्छीरामजी के छहों पुत्र सालासर आ पहुँचे और अपनी शोकाकुल बहन को सांत्वना दी। इसके पश्चात् कान्ही अपने अबोध पुत्र को लेकर भाइयों सहित मायके चली गई। पं. सुखरामजी के चाचा पं. खींवारामजी थे। वर्तमान समय में इनके वंश-वृक्ष के पाँच परिवार यहाँ निवास करते हैं।

पं. सुखरामजी के एक अन्य भाई भी थे। जनश्रुति के अनुसार एक बार सालासर का एक यात्रियों का काफिला नागोर के टीडियासर ग्राम के पास से गुजरा तभी वहाँ के महन्तजी मिले और उन्होंने पूछा कि आप सब लोग कहाँ के निवासी हैं? यात्रियों ने बताया कि हम सालासर ग्राम के निवासी हैं, तब महन्तजी ने पुनः पूछा कि वहाँ सब कुशल तो है? जब यात्रियों ने पंडित सुखरामजी की मृत्यु का समाचार सुनाया तो महन्तजी अश्रुपूरित नेत्रों से बोले कि पं. सुखरामजी मेरे सहोदर भ्राता थे। रूल्याणी ग्राम के पं. लच्छीरामजी पाटोदिया के 6 पुत्र एवं एक पुत्री उत्पन्न हुई। भाइयों और बहन में छोटे मोहनदास बाल्यकाल से ही श्रीहनुमत् भक्त थे। जैसा पंडित स्वरूपनारायणजी द्वारा सं. 2024 में रचित लावणी की इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

दधीच द्विज सूंटवाला, सालासर में थे सुखरामजी।

पाटोद्या लछिरामजी की लड़की थी कान्ही नाम जी॥
षट् पुत्र पुत्री सातवीं जनमी रूल्याणी ग्राम जी।
छोटा ही छोटा पुत्र मोहनदास था गुणधाम जी॥

पं. श्री लच्छीरामजी के सबसे छोटे पुत्र मोहनदास के नामकरण के समय ही ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि आगे चलकर यह बालक एक तेजस्वी सन्त-पुरुष बनेगा, जिसका यश दुनिया में चहुंदिश विस्तृत होगा। बचपन से ही उनकी गम्भीर मुख-मुद्रा को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह भगवान के ध्यान में मगन हैं। ऐसा पूर्वजन्म के पुण्य-प्रताप से ही सम्भव है। कालान्तर में पंडित लच्छीरामजी के देहान्त के पश्चात् मोहनदास अपना अधिकांश समय ईश्वर के स्मरण में व्यतीत करने लगे। साथ ही उन्हें परिवार एवं संसार से विरक्ति उत्पन्न होने लगी। सामूहिक परिवार में अधिक समय तक साथ न रहने का विचार कर कान्ही बाई ने सालासर में आने का संकल्प किया। मोहन ने अपने भाइयों से पूछा कि बहन के ये संकटपूर्ण दिन किस प्रकार व्यतीत होंगे? उन्हें तो सहारे की आवश्यकता है। हम भाइयों में से एक को भानजे उदय के बड़े होने तक वहाँ कृषि कार्य में सहयोग करना चाहिए।

सुन भाय्याँ उत्तर दियो, म्हांक टाबरी साथ जी।
रह्यां सरे नहीं एक पल, सुनो हमारे भ्रात जी॥
दुख मेटन भगनि का मोहन, सालासर में रहा सुजान।
निज भक्त जान के विप्र मोहन की, भक्ति लखि उरम्यान॥

किन्तु पाँचों भाइयों ने उत्तर दिया कि हम तो बाल-बच्चे वाले हैं और बहन का अन्न नहीं ग्रहण कर सकते, इसलिये वहाँ रहने में हम सब असमर्थ हैं। भाइयों के द्वारा यह सुनकर मोहनदासजी का मन उदास हो गया कि सगे भाई भी विपत्ति में साथ छोड़

देते हैं। तब उन्होंने अपने मन में दृढ़-संकल्प किया कि मैं स्वयं बहन के पास रहूँगा और बोले— बहन, मैं आजीवन तेरे साथ रहूँगा। इन भाइयों को यहीं रहने दो। तुम अपने मन में कोई दु:ख मत लाओ। मैं तुम्हारे साथ हूँ। इस प्रकार समझाकर मोहनदासजी अपने जन्मस्थान रूल्याणी से विदा होकर बहन के साथ ही सालासर में उसके घर में रहने लगे। इसी के साथ ईश्वर की भक्ति भी करते रहे। कुछ ही वर्षों के परिश्रम से मोहनदासजी ने अपनी बहन के खेतों को सोना उगलने वाले उपजाऊ बना दिये।

कुछ समय पश्चात् पं. सुखरामजी के भाई जो टीडियासर में महन्त थे, उनके सहयोग से नागोर के ग्राम रताऊ निवासी एक ब्राह्मण की सुशीला पुत्री के साथ अपने भानजे उदय का विवाह कर दिया। सर्वगुण सम्पन्न नव-वधू घर आ गई। कान्ही बाई के घर मंगलाचार होने लगे और इसी के साथ उनके घर में लक्ष्मी का आगमन होने लगा। कान्ही बाई के घर भूखों को भोजन, प्यासे को पानी, राही को ठिकाना और विश्राम मिलने लगा। कोई भिक्षुक खाली हाथ नहीं लौटता था। याचकगणों का आशीर्वाद भी उन्हें प्राप्त होता था, क्योंकि परोपकार की भावना से दिये गये दान का फल दिन-दूना, रात-चौगुना होता है।

बालक मोहनदास को भक्ति की प्रेरणा उनके पूज्य पिता पंडित लच्छीरामजी से बाल्यावस्था में ही मिल चुकी थी, परन्तु स्वयं पवन-पुत्र हनुमानजी के द्वारा मोहनदासजी को भक्ति की प्रेरणा का प्राप्त होना एक अलौकिक प्रसंग है।

उस वक्त आय मोहन को कहे, महावीर स्वामी आप जी।
गंडासी खोश बगाय दी, मत कर रे पापी पाप जी॥
रैन दिन हरि को भजो, और जपो अजपा जाप जी।
सब माफ औगुण गण हरे, त्रय ताप तन कर साफ जी॥

श्रावण मास में एक दिन उदयरामजी खेत में हल चला रहे थे और मोहनदासजी बंजर भूमि को कृषि के योग्य बना रहे थे। स्वयं हनुमानजी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें कृषि के कार्य से विरक्त होने का आदेश दिया और मोहनदासजी के हाथ से गण्डासी छीनकर दूर फेंक दी, किन्तु वे उसे उठाकर पुन: सूड़ करने लगे, फिर हनुमानजी ने गण्डासी छीनकर फेंक दी और ईश्वर भजन करने का आदेश दिया। इस प्रकार यह लीला कई बार हुई। उदयरामजी दूर से यह सब देख रहे थे कि मामाजी बार-बार गण्डासी दूर फेंकते हैं और दुबारा उसे उठा लाते हैं, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हल छोड़कर पास में आये और उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा कि आपका चित्त ठीक नहीं है, आप दो घड़ी आराम कर लीजिये, किन्तु मोहनदासजी ने बताया कि कोई देवता मेरे पीछे पड़े हैं, मेरा चित्त ठीक नहीं है। इस घटना की चर्चा सायंकाल उदयरामजी ने अपनी माँ से की और कहा कि मामा का मन काम करने में नहीं लगता है, अगर हम इनके भरोसे रहे तो इस बार धान की फसल नहीं होगी। कान्ही बाई के मन में यह विचार आया कि मोहन का विवाह अभी तक नहीं हुआ है, यदि इन्हें विवाह बन्धन में बांध दिया जाये तो इनका चित्त स्थिर हो जायेगा और अगर अपने भाई का विवाह नहीं किया तो यह संन्यासी हो जायेगा। फिर लोग क्या कहेंगे ? ऐसा सोचकर बहन अपने भाई मोहनदास के विवाह-सम्बन्ध के लिए प्रयास करने लगी।

माता कहे बेटा हुयो, मामो भी मुटियार जी।
विवाह सगाई इनका, जल्दी है करने सार जी॥

कान्ही बाई के द्वारा विवाह के सम्बन्ध में पूछने पर हर बार मोहनदासजी मना कर देते थे, लेकिन बहन ने सोचा कि

भाई संकोच के कारण मना करता है, इसलिए वह विवाह की तैयारी में लगी रही। बहुत प्रयास करने के बाद एक लड़की से सगाई तय हुई। सस्ते भाव में अनाज की बिक्री करके सगाई में देने के लिए सोने के गहने बनवाये एवं नाई को लड़की के घर नेगचार करने के लिए भेजा, किन्तु वहाँ पहुँचने के पूर्व ही उस कन्या की मृत्यु हो गई। भक्त मोहनदासजी ने उक्त घटना के सम्बन्ध में भविष्यवाणी पूर्व में ही कर दी थी। अब सबको उनसे इस ज्ञान पर आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् कान्ही बाई ने उनके विवाह के लिए पुन: नहीं कहा और वे स्वयं भी ईश्वर का भजन करने लगीं, उपरोक्त घटना के बाद भक्त मोहनदासजी जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मौनव्रत धारण करके कठिन तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे।

कुछ समय पश्चात् कान्ही बाई के घर भगवान हनुमानजी साधु का रूप धरकर भिक्षा माँगने आ गये,

जिस प्रकार भक्त भगवान के दर्शन को तरसते हैं, ठीक उसी प्रकार से भगवान भी अपने प्यारे भक्तों को जाकर दर्शन देते हैं।

एक दिन कानी, उदय मोहन, यह भोजन कर रह्या।
साधु का धर के भेष, आ हनुमान हाका कर गया॥
आया जी म्हे, आया जी म्हे, दो चार बेरी यूँ कहा।
मोहन कहे तूं घाल आटो, बाई कानी कर दया॥

उस समय कान्ही बाई मोहनदास और उदय को भोजन करा रही थीं। इस कारण से उन्हें भिक्षा देने में देर हो गई। थोड़ी देर में कान्ही बाई ने द्वार पर देखा तो वहाँ कोई नहीं था, जब वह वापस अन्दर आईं तो उन्हें उसी साधु की उपस्थिति का ज्ञान हुआ, किन्तु देखने पर कोई दिखाई नहीं पड़ा। इसके बाद मोहनदासजी ने बताया कि ये तो स्वयं बालाजी महाराज थे, जो दर्शन देने आये थे। तब कान्ही बाई ने भाई से आग्रह किया कि भगवान बालाजी के दर्शन हमें भी कराओ। दो माह पश्चात् दुबारा भगवान श्री हनुमानजी ने द्वार पर आकर नारायण हरी, नारायण हरी का उच्चारण किया। तब कान्ही बाई ने मोहनदासजी को बताया कि कोई साधु बाहर खड़ा है, इतना सुनकर मोहनदासजी द्वार पर आये और देखा तो श्री बालाजी वापस जा रहे थे, वे उनके पीछे-पीछे दौड़े, काफी दूर जाने पर सन्त वेशधारी बालाजी ने उनकी परीक्षा लेने के लिए उनको डराया-धमकाया, लेकिन भक्त अपने भगवान से कहाँ डरते हैं, मोहनदासजी ने हनुमानजी के चरण-कमलों को मजबूती से पकड़ लिया। तब हनुमानजी ने उनसे कहा कि तुम मेरे पीछे-पीछे मत आओ। मैं तुम्हारी निश्छल भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम जो भी वर माँगोगे मैं तुमको अवश्य दूँगा। मोहनदासजी ने हाथ जोड़कर कहा कि आप बहन कान्ही बाई के निवास-स्थान पर अवश्य चलिये।

यों बोले हनुमान चलें हम, तुमको ये वचन निभाने होंगे।
खीर खांड सूं भोजन, सेज अछूति सोयेंगे॥
मोहनदास मंजूर किया, जब कहा प्रकट यहाँ होवेंगे।
वरदान दिया हम, भजन करने से पाप तेरे सब खोवेंगे॥

भक्त वत्सल श्री हनुमानजी महाराज ने उत्तर दिया, मैं अवश्य चलूँगा, किन्तु मैं केवल पवित्र आसन पर ही बैठूँगा और मिश्री सहित खीर व चूरमे का नैवेद्य स्वीकार करूँगा।

भक्त शिरोमणि मोहनदासजी द्वारा सभी प्रकार के आश्वासन देने तथा अत्यधिक प्रेम व आग्रह से परम कृपालु श्री बालाजी महाराज उनकी बहन कान्ही बाई के घर पधार गये और खीर व खांड से बना हुआ चूरमा खाकर बहुत प्रसन्न हुये। भोजन के पश्चात्

9

10

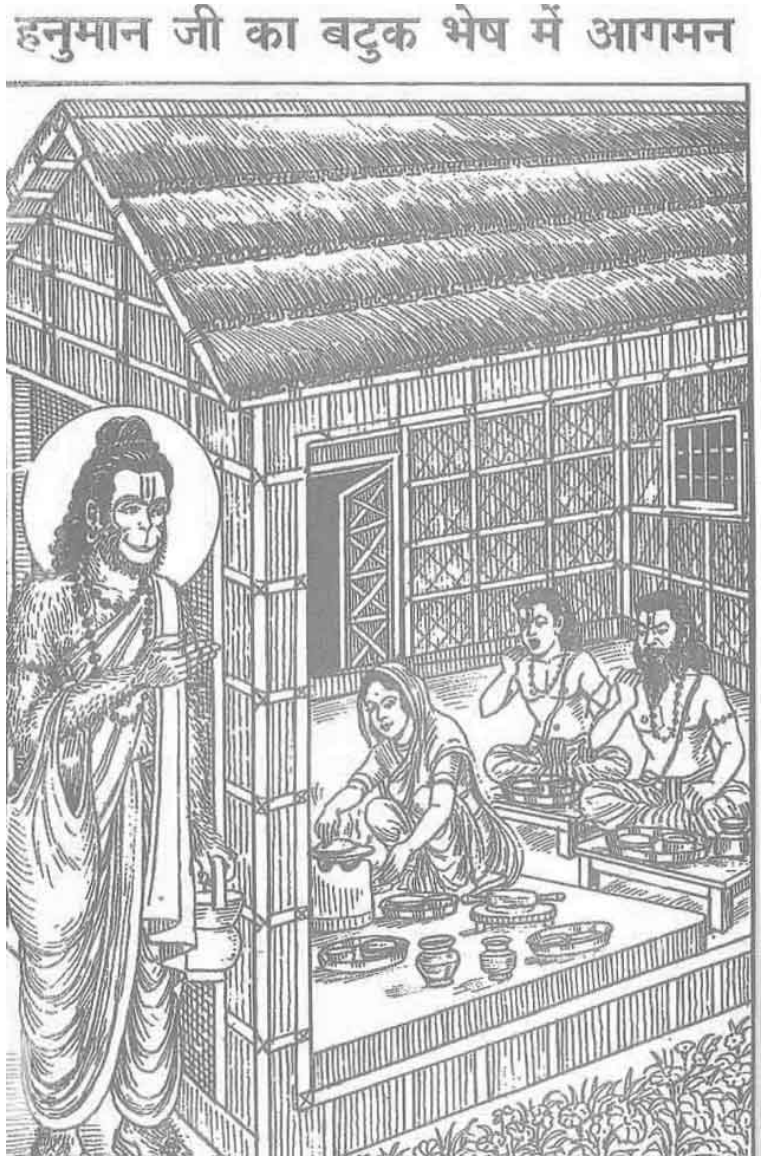

11

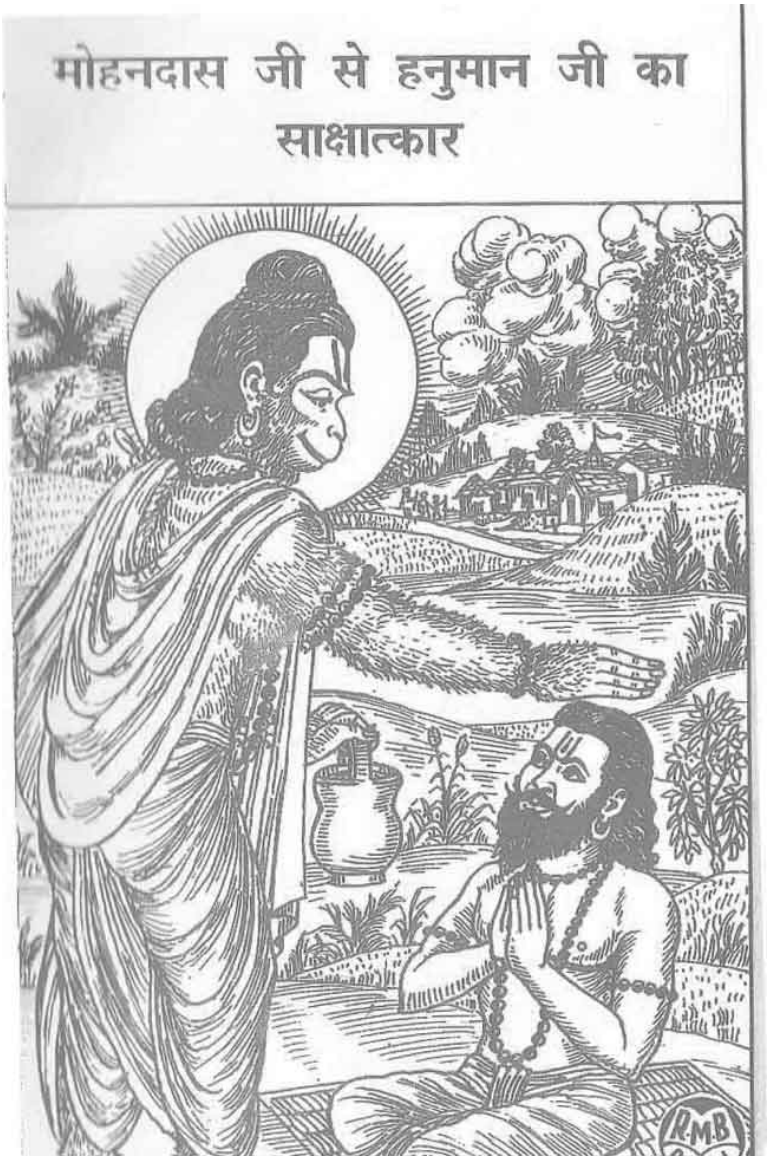
मोहनदास जी से हनुमान जी का साक्षात्कार
R.M.B

12

संत मोहनदास जी द्वारा जीवित समाधि
श्री रामजी
मोहन दास वाणी
R.M.B
CHOMU

विश्राम करने के लिए पहले से तैयार शैय्या पर विराजमान् हुए। भाई-बहन की निश्छल सेवा-भक्ति से प्रसन्न होकर श्री बालाजी ने कहा कि कोई भी मेरी छाया (आवेश) को अपने ऊपर करने की चेष्टा नहीं करेगा। श्रद्धा सहित जो भी भेंट दी जायेगी, मैं उसको प्रेम के साथ ग्रहण करूँगा और अपने भक्त की हर मनोकामना पूर्ण करूँगा एवं इस सालासर स्थान में सदैव निवास करूँगा। ऐसा कहकर श्री बालाजी अन्तर्ध्यान हो गए। तत्पश्चात् भक्त शिरोमणि श्री मोहनदासजी उस गाँव के बाहर एक बालू के टीले के ऊपर छोटी-सी कुटिया बनाकर उसमें निवास करने लगे और श्री हनुमानजी की भक्ति में मग्न हो गये।

ईश्वर का सच्चा भक्त ईश्वर-भक्ति में लीन होने के कारण सांसारिक मोह-माया में नहीं पड़ता और वह कम से कम ही बोलता है। वह अपने मन में ईश्वर की मूर्ति को ही संजोये रहता है, किन्तु सांसारिक गतिविधियों के कारण अनेकों बाधायें आती हैं, फिर भी उनकी ईश्वर-भक्ति का तार नहीं टूटता। वे स्वभाव-वश एकान्तप्रिय होते हैं, क्योंकि ईश्वर-भक्ति एकान्त में ही होती है। एकान्तप्रिय होने के कारण और किसी से न बोलने के कारण भी सांसारिक लोग उन्हें पागल समझ बैठते हैं। इसी कारण से भक्त-शिरोमणि श्री मोहनदासजी को लोग 'बावलिया' नाम से पुकारने लगे। वे सभी सांसारिक झंझटों से बचने के लिए एक निर्जन स्थान में शमी (जाँटी) वृक्ष के नीचे अपना आसन लगाकर बैठ गये और मौनव्रत का पालन करने लगे।

एक बार की बात है कि इस शमी वृक्ष के नीचे मोहनदासजी अपनी धूनी रमाकर तपस्या कर रहे थे, वह वृक्ष फलों से लद गया था। तभी एक दिन—

मोहन कहे मत सोचकर, तू सोच से गिर जाएगा।
कह साँच तुझको कौन भेजा, काज सब सर जाएगा॥
माता नटी मेरे बाप भेजा, तुझे कुण चर जाएगा।
जा बाप को कह साग खा, तू आज ही मर जाएगा।

उस वृक्ष पर एक जाट का पुत्र चुपचाप चढ़कर शमी के फल (सांगरी) तोड़ने लगा। डर के कारण घबराहट में कुछ फल मोहनदासजी के ऊपर गिर पड़े, जिससे उनका ध्यान भंग हो गया। उन्होंने सोचा कि कहीं कोई पक्षी घायल होकर तो नहीं गिरा और उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। जाट का पुत्र भय से काँप उठा। मोहनदासजी ने उसे भयमुक्त करके नीचे आने को कहा। नीचे आने पर उससे पूछा कि तुम यहाँ क्यों आये हो, तुमको किसने भेजा है? उसने बताया कि माँ के मना करने के बाद भी मेरे पिता ने मुझे यहाँ 'सांगरी' ले आने के लिए विवश किया और यह भी कहा कि तुझे बावलिया से क्या डर, वह तुझे खा थोड़े ही जायेगा? ऐसा सुनकर भक्त प्रवर ने कहा कि जाकर अपने पिता से कह देना- इन सांगरियों का साग खाने वाला व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। जनश्रुति के अनुसार उस जाट ने महात्मा मोहनदासजी के द्वारा मना करने के पश्चात् भी वह सांगरी का साग खा लिया और उसकी मृत्यु हो गई। उस जाट को साधु के तिरस्कार का दण्ड मिल गया।

जनश्रुति के अनुसार आजन्म ब्रह्मचारी भक्त मोहनदासजी के साथ निर्जन स्थान में श्री हनुमानजी महाराज स्वयं बाल-क्रीड़ायें करते थे।

गाँव के सब हार बोले, उदोजी के साथ जी।
इस खोज वाला ना मिले, कर जोड़ बोले बात जी।
मामा तुम्हारा जबर है, जबरां सू घाली बाथजी।
इनकी गति ये ही लखें, ना और की औकातजी॥

एक बार भक्त शिरोमणि के शरीर पर मल्ल-युद्ध के खेल में लगी चोटों को देखकर उनके भानजे उदयराम ने उसके बारे में पूछा, तब मोहनदासजी ने अबोध ग्वालों द्वारा पीटने का बहाना बनाकर उसे टाल दिया, परन्तु उदयराम को इस पर सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने खोजियों को बुलाकर सारी बात बतायी, उनसे पद-चिन्हों को देखकर रहस्य का पता लगाने को कहा। जब खोजियों ने पैरों के चिन्ह देखे तो उन्हें कोई पद-चिन्ह काफी बड़ा और कोई चिन्ह बहुत छोटा मिला। कहीं-कहीं पर तो वे पद-चिन्ह मिले ही नहीं। अन्ततः पद-चिन्ह अन्वेषक सच्चाई का पता लगाने में पूरी तरह असफल हो गये और वे उदयरामजी से हाथ जोड़कर बोले कि ये पद-चिन्ह किसी मनुष्य के नहीं हैं, बल्कि किसी देवता या राक्षस के हैं।

इस घटना के पश्चात् भक्त शिरोमणि मोहनदासजी के प्रति लोगों के मन में आदर-भाव, सम्मान और आस्था दिनों-दिन बढ़ती ही गई।

सालासर ग्राम भूतपूर्व में बीकानेर राज्य के आधीन था। उस समय ग्रामों के शासन का कार्य ठाकुरों के हाथ में था। सालासर एवं उसके निकट के अनेकों गाँव सौभाग्य देसर (शोभासर) के ठाकुर धीरज सिंह की देख-भाल में थे। उसी समय एक कुख्यात डाकू हजारों घुड़सवार साथियों के साथ अत्याचार करता हुआ सालासर के सन्निकट पहुँचा। शाम होने पर वहीं डेरा डालने का विचार करके अपने सहयोगी डाकुओं को पास के गाँव से खाने-पीने का सामान लाने के लिए भेजा और रसद न देने पर लूट-पाट करने की धमकी भी दी।

है एक दिवस की बात, फौज चढ़ आई।
सालम सिंह ठाकुर की, अकल चकराई॥

जद मोहनदास, सारों से बात सुणाई।
बजरंग कहे होसी, फतेह डरो मत भाई॥

उससे आतंकित ठाकुर धीरज सिंह और सालमसिंह भक्त-शिरोमणि श्री मोहनदासजी की कुटिया में आये और कहा कि हे महाराज, हम बहुत विपत्ति में हैं। न तो हमारे पास रसद है और न ही सेना। तब मोहनदासजी ने उन्हें आश्वासन दिया और श्री बालाजी का नाम लेकर दुश्मन की लाल झण्डी उड़ा देने को कहा क्योंकि संकट मिटाने वाले श्रीहनुमानजी ही संकट दूर कर सकते हैं और किसी की भी ध्वजा-पतन का शोक उसकी पराजय ही होती है। साथ ही उन्होंने निर्देश दिया कि डाकुओं के गाँव में प्रवेश करने के पहले ऐसा करें तो गाँव का संकट दूर हो जायेगा, डाकू पैरों में आ गिरेंगे और ठीक वैसा ही हुआ। ठाकुर ने दुश्मन की झण्डी उड़ा दी और वह डाकू उनके चरणों में गिर पड़ा। इस घटना के बाद श्रीबालाजी के प्रति ठाकुर सालमसिंह की श्रद्धा व भक्ति और बढ़ गई, इसी के साथ भक्त-शिरोमणि मोहनदासजी के प्रति विश्वास भी बढ़ा। इस तरह से मोहनदासजी ने अपनी वचनसिद्धि नीति एवं कृपा से इस गाँव की अनेकों बार रक्षा की। उन्होंने कई बार गाँव के निवासियों को तरह-तरह की महामारियों एवं अकालजन्य स्थिति से चमत्कारिक ढंग से छुटकारा भी दिलाया।

परचा मोहन दास का ठाकर देख अपार।
बालाजी स्थापन्न की लीन्हीं सलाह विचार॥

उचित समय आया हुआ जानकर भक्त-शिरोमणि मोहनदासजी ने श्री हनुमानजी का भव्य मन्दिर बनवाने का संकल्प किया और मूर्ति मँगवाने के निमित्त ठाकुर सालमसिंह ने अपने श्वसुर चम्पावत सरदार जो आसोटा के निवासी थे, को मूर्ति भेजने का सन्देश प्रेषित करवाया।

जब आसोटे हल के ओटे श्रावण में आन प्रकटे हनुमान।
निज भक्त जानके विप्र मोहन की भक्ति लखि उर ध्यान॥

संवत् 1811 (सन् 1754 ई.) में प्रात:काल सूर्योदय के समय नागोर क्षेत्र के आसोटा निवासी एक जाट कृषक जो घटाला गोत्र का था, को अपने खेत में हल जोतते समय हल के फाल से कुछ टकराने की आवाज सुनायी पड़ी और उस समय हल रूक गया। तब उसने उस जगह खुदाई करके देखा तो वहाँ एक मूर्ति थी उसे निकाल लिया, किन्तु प्रमाद के कारण उस मूर्ति की ओर उस जाट किसान ने कोई ध्यान नहीं दिया। थोड़ी देर के पश्चात् उसको पेट में भयंकर पीड़ा की अनुभूति हुई, जिस कारण वह दर्द से बेहाल होकर एक पेड़ की छाँव में सो गया। मध्यान्ह काल में उस जाट किसान ने अपनी पत्नी से सारी कथा बखान की। जाटनी बुद्धिमती थी। अत: उसने अपने आँचल से उस कृष्णमयी पाषाण शिला प्रतिमा को पोंछ-पाँछ कर स्वच्छ किया। तदुपरान्त उसको उस शिला-खण्ड में राम-लक्ष्मण को कन्धे पर लिये हुए भगवान मारुति-नन्दन की दिव्य झांकी के दर्शन हुए। अत: उसने बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उस प्रतिमा को एक वृक्ष की जड़ पर स्थापित कर दिया।

इसके पश्चात् पूरी श्रद्धा सहित बाजरे के चूरमे का भोग लगाया और ध्यान में लीन हो गई। तभी मानों चमत्कार ही हुआ, वह जाट किसान जो उदर-पीड़ा से तड़प रहा था, स्वस्थ होकर बैठ गया और कृषि कार्य करने लगा।

मूर्ति देख खुशी भये ठाकर, निज महलां में धरी मंगाय।
सूते ठाकर के स्वप्न में जाय कही, मोहि सालासर तुरंत पुगाय॥
अठारा सौ ग्यारोत्तरा, प्रकट भये हनुमान।
मोहनदास पर कृपा कीन्हीं, बणी धोरे पर धाम॥

इस घटना की काफी ख्याति फैली। ख्याति को सुनकर आसोटा के ठाकुर उक्त मूर्ति के दर्शन की लालसा से वहाँ आये एवं उनके दर्शन करके उक्त मारुतिनन्दन की मूर्ति को अपने महल में ले आये। रात में सोते समय ठाकुर को श्री हनुमानजी ने प्रकट होकर दर्शन दिए और साथ ही आज्ञा दी कि तुम तत्काल ही इस मूर्ति को सालासर पहुँचा दो। भोर होते ही ठाकुर ने हनुमानजी महाराज की आज्ञानुसार अपनी निजी बैलगाड़ी में पाषाण-मूर्ति को पधरा कर अपने कुछ निजी कर्मचारियों की सुरक्षा में भजन-मण्डली के साथ सालासर के लिये विदा किया।

उसी रात में भक्त शिरोमणि मोहनदासजी को भी श्री मारुति-नन्दन के दर्शन प्राप्त हुये। उन्होंने भक्त से कहा कि तुम्हें दिये गये वचन को निभाने के लिये मैं स्वयं काले पत्थर की मूर्ति के रूप में आ रहा हूँ, जिसे आसोटा के ठाकुर ने अपनी सुरक्षा में भेजा है। तुम उस मूर्ति को टीले (धोरे) पर ठाकुर सालम सिंह की उपस्थिति में उक्त स्थान पर स्थापित करा देना। स्वप्न में प्रभु की आज्ञा पाकर श्री मोहनदासजी ने प्रात:काल शीघ्र ही नित्यकर्मों से निवृत्त होकर गाँव में जाकर सभी ग्रामवासियों को सूचना दी और उनके साथ कीर्तन करते हुए श्री बजरंगबली की मूर्ति की अगवानी हेतु प्रस्थान किया। सभी ग्रामवासी भगवान हनुमानजी की भक्ति में लीन होकर तन्मयता से कीर्तन गाते-नाचते हुए चल पड़े। आगे जाने पर पावोलाव नामक तालाब के निकट भक्त और भगवान का अविस्मरणीय मिलन हुआ। इसके उपरान्त उक्त बैलगाड़ी के बैल अपने आप सालासर के लिए चल पड़े। सालासर पहुँचने पर एक समस्या हुई कि मूर्ति की स्थापना कहाँ की जाए। तब मोहनदासजी महाराज ने कहा कि धोरे पर चलते-चलते जहाँ भी बैल रुक जायें, वही स्थान श्री बालाजी की इच्छा का स्वीकृत

स्थान होगा। कुछ समय बाद चलते-चलते बैल एक स्थान पर रुक गये। उसी स्थान पर बालाजी की मूर्ति की स्थापना की गयी।

सम्वत् 1811 (ई. सन् 1754) में श्रावण शुक्ला नवमी तिथि को शनिवार के दिन श्री हनुमानजी की मूर्ति की स्थापना हो ही रही थी कि समीपस्थ जूलियासर के ठाकुर जोरावरसिंहजी आ पहुँचे। उनकी पीठ पर अदीठ (दुष्ट व्रण) बरसों से था, जिसके कष्ट से वे पीड़ित थे। उन्होंने अपने अदीठ के ठीक होने की मनौती मानी और दर्शन करके अपने निवास स्थान पर चले गये। ठाकुर जोरावर सिंह ने डूँगरास ग्राम में परम्परानुसार स्नान कराते समय नाई को आज्ञा दी कि मेरी पीठ पर अदीठ है इसलिये सावधानी पूर्वक धीरे-धीरे नहलाना। नाई ने पीठ पर देखकर कहा कि आपकी पीठ में तो कोई घाव नहीं है, केवल एक चिन्ह है। ऐसा दैव-चमत्कार देखकर ठाकुर साहब अचम्भित रह गये और स्नानादि से निवृत्त होकर बिना भोजन किये ही सालासर आये और यहाँ उपस्थित लोगों से उक्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पाँच रुपये भेंट भी चढ़ाये। इसके बाद पूजा-सामग्री मंगवाकर श्रद्धा-भक्ति पूर्वक बालाजी भगवान की पूजा-अर्चना की। साथ ही बुँगला (छोटा मन्दिर) भी बनवाने की व्यवस्था की और तत्पश्चात् वहाँ से रवाना होकर अपने ग्राम वापस आ गये।

जगराता करि सोमहि बारू। आयउ पुनि सुचि मंगल चारू॥
पुलकहि तन मन अति अनुरागा। मोहन मूरति सवारण लागा॥
मंगल मोद उछाह अति टीका। पोता प्रभु कै सेंदुर घी का॥
कन्धे राम लखन बलकारी। भई अदृश्य रेखाकृति सारी॥
सो अबु सोचि मनहि अनुसारी। भावा सो प्रभू रूप संवारी॥
प्रथम दरस जेहि रूपहि कीन्हा। मूंछ दाढ़ि तस चोलहि दीन्हा॥

सम्वत् 1811 श्रावण शुक्ला द्वादशी मंगलवार को भक्त-शिरोमणि श्री मोहनदासजी भगवान का ध्यान करते-करते भक्ति-रस में इतना सराबोर हो गये कि भाव-विभोर हो उठे। इसी आनन्दातिरेक स्थिति में उन्होंने घी और सिन्दूर का लेपन श्री मारुतिनन्दन की प्रतिमा पर करके उन्हें शृंगारित किया। उस समय श्री हनुमानजी का पूर्व दर्शित रूप, जिसमें हनुमान जी श्रीराम-लक्ष्मण को अपने कन्धे पर धारण किये हुए थे, वह अदृश्य हो गया। उसके स्थान पर मारुतिनन्दन को जो स्वरूप पसन्द था, दाढ़ी-मूँछ, मस्तक पर तिलक, विकट भौंहें, सुन्दर आँखें, एक हाथ में पर्वत और एक हाथ में गदा धारण किये हुए – का दर्शन होने लगा।

भक्त मोहनदासजी फतेहपुर शेखावाटी के मुसलमान कारीगर नूर मोहम्मद से पूर्व परिचित थे। उन्होंने नूर मोहम्मद को तत्काल सालासर बुलाया। वह बेचारा मुसलमान कारीगर रोजी-रोटी की चिन्ता में परेशान था। इस पर भी फक्कड़ भक्तराज ने उस कारीगर को वहाँ बेगार करने के लिए बुला लिया, इस प्रकार से मन में विचार करता हुआ वह कारीगर भक्तराज के पास आ पहुँचा। उसके आते ही मोहनदासजी ने उसे एक रुपया देकर कहा कि भैया, पहले घर जाओ और घर पर भोजन की व्यवस्था करके आओ, फिर काम करना। यह देखकर वह चकित रह गया और मोहनदासजी से क्षमा याचना करने लगा कि मैं अपने मन में कुविचार लाया था।

तदोपरान्त संवत् 1815 में सर्वप्रथम नूरा और दाऊ नाम के दो कारीगरों द्वारा मिट्टी एवं पत्थर से श्रीबालाजी के मन्दिर का निर्माण कार्य हुआ। कुछ समय पश्चात् सीकर नरेश रावराजा देवीसिंह का पोतदार (रोकड़िया) काफी अधिक धन लेकर रामगढ़

के लिये जा रहा था। तब बीहड़ जंगल के मध्य उस समय के दो कुख्यात डाकू डूंगजी, जवाहरजी उसे मिल गये। वे बड़े ही दयावान प्रकृति के थे। वे धनवानों से धन छीन कर निर्धन को दे देते थे। गरीबों को वे भूलकर भी नहीं लूटते थे, परन्तु उन्होंने उक्त रोकड़िये को कुछ भी नहीं कहा। यह एक अत्यधिक आश्चर्य की बात थी।

वास्तव में जब डाकुओं ने उक्त रोकड़िये को पकड़ लिया, तब उसने आर्त-स्वर से श्रीबालाजी भगवान से प्रार्थना की और मनौती की कि हे भगवान बालाजी! मैं मन्दिर बनवाने का संकल्प करता हूँ, मेरी रक्षा करो। तत्पश्चात् ही डाकुओं ने उसे धन सहित छोड़ दिया था।

जब यह आश्चर्यजनक बात पोतदार ने रामगढ़ के महाजन को बताकर बालाजी महाराज की असीम अनुकम्पा युक्त महिमा का बखान किया, तब तत्काल ही उन्होंने सिलावट (चेजारा) भिजवाकर संकल्प की पूर्ति की और श्रीहनुमानजी का मन्दिर-निर्माण कार्य कराया।

शनैः शनैः मन्दिर विकासकार्य प्रगति की ओर अग्रसर होता रहा और वर्तमान में मन्दिर के किवाड़ व दीवारें चाँदी से बनी भव्य मूर्तियों और चित्रों से सुसज्जित हैं, दीवारों में अति सुन्दर दोहे लिखे हुये हैं, जिनके बहुत सुन्दर भावार्थ हैं। इसी तरह गर्भगृह के मुख्य द्वार पर श्रीरामदरबार की मूर्ति के नीचे पाँच मूर्तियाँ हैं। मध्य में भक्त मोहनदासजी बैठे हैं। दायें आराध्य श्रीराम एवं हनुमानजी हैं, बांये बहन कान्ही और पं. सुखरामजी खड़े भक्ति में लगे मोहनदासजी को आशीर्वाद देते हुये दिखाये गये हैं।

कुछ काल उपरान्त जब सीकर के रावराजा देवीसिंहजी के पुत्र नहीं हुआ, तब वे अपनी जन्मभूमि बलारा गाँव (जो सीकर में ही था) चले, वहाँ से वे एक पुत्र को गोद लेना चाहते थे। मार्ग में ढोलास नाम का एक गाँव पड़ता है। उसी ग्राम के निकट ही भक्तराज मोहनदासजी के गुरु भाई गरीबदासजी कुटिया बनाकर रहते थे। वहीं मार्ग में एक विशाल वृक्ष था, जिसकी शाखा से मार्ग अवरुद्ध था। जब मार्ग में जाते समय सीकर-नरेश को बाधा पड़ी तो उन्होंने अपने वापस लौटने तक उस शाखा को कटवा डालने को कहा, किन्तु लौटने पर उन्होंने देखा कि शाखा उसी प्रकार से मार्ग को अवरुद्ध किये हुए है तो अपने आदेश की अवहेलना पर उन्हें बड़ा क्रोध आया और वह गरीबदासजी को बुरा-भला कहने लगे। तभी गरीबदासजी ने कहा कि "ले जा तेरे रागड़िये को"। (हाथी के लिए उक्त शब्द को अपमानजनक रूप में प्रयोग किया जाता है।)

बार-बार ऐसा कहने पर राजा नीचे झुककर निकलने लगा तो वृक्ष की शाखा अत्यधिक ऊँची उठ गई। ऐसा अद्भुत चमत्कार देखकर देवीसिंह हाथी से उतर पड़ा और प्रणाम करके क्षमा-याचना की। गरीबदासजी के क्षमा करने पर उसने पुत्र-प्राप्ति की याचना की, तब स्वामी गरीबदासजी ने पुत्र-प्राप्ति हेतु भक्तराज मोहनदासजी के पास सालासर जाने का आदेश दिया।

रावराजा देवीसिंह सीकर आ गये। उसके कुछ दिन बाद ही उनके पोतदार ने डूँगजी-जवाहरजी के द्वारा पकड़े जाने एवं श्रीबालाजी की असीम अनुकम्पा से संकट निवारण होने की घटना कह सुनाई, साथ ही मन्दिर के पूर्ण हो जाने का समाचार भी कहा।

राजा देवीसिंह के हृदय में भगवान बालाजी के दर्शन की अभिलाषा तीव्र हुई और वह सालासर पहुँचे तब भक्तप्रवर मोहनदासजी ने उनकी मनोकामना की पूर्ति के लिए श्रीबालाजी

को एक श्रीफल (नारियल) अर्पण करने को कहा और उसी श्रीफल को समीपस्थ जाल-वृक्ष में बाँधने की आज्ञा दी।

श्री मोहनदासजी ने कहा कि राजन, आपके एक सम्बन्धी महोवत सिंह हैं, जो दुजोद ग्राम में निवास करते हैं, उन्हीं की कन्या से आपको एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी, किन्तु दैवयोग से वह पुत्र विकलांग होगा, पर उससे आपके कुल की मान-प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

भक्तराज की आज्ञा पाकर राव्राजा ने श्री मोहनदासजी से विदा ली और लगभग दस माह पश्चात् उनके यहाँ एक विकलांग पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम लक्ष्मण सिंह रखा गया। कुमार के मुण्डन-संस्कार हेतु संवत् 1844 में रावराजा देवी सिंह सपरिवार सालासर आये और मन्दिर के समीप एक महल का निर्माण भी कराया, इसी के साथ ही कुछ भूमि भी प्रदान की।

उक्त घटना के पश्चात् से ही मन्दिर प्रांगण में स्थित जाल-वृक्ष में श्रीफल बांध कर मनोकामना पूर्ण करने की प्रथा चली आ रही है। वर्तमान समय में उक्त जाल-वृक्ष तो नहीं है, पर मन्दिर प्रांगण के अन्य वृक्षों में एवं मन्दिर में मनोकामनार्थ नारियल बांधे जाते हैं। नारियलों की बढ़ती जा रही संख्या उक्त स्थान की सिद्धि का बखान कर रही है।

जनश्रुति के अनुसार एक बार डीडवाना के मुसाहिब को नागोर के राजा ने मौत की सजा का फरमान जारी किया, किन्तु उक्त डीडवाना के मुसाहिब ने सालासर के बालाजी महाराज की शरण ले ली। श्री बालाजी की शरणागत् हो जाने के पश्चात् उनकी असीम कृपा एवं भक्तराज मोहनदासजी के शुभ आशीर्वाद से उसे जीवन का अभयदान मिला। राजा ने उसे क्षमा प्रदान की। वह पुनः श्री बालाजी के दर्शनार्थ सालासर आया और प्रभु की सेवा में दस हजार रुपये अर्पण किए। उसी धनराशि से मन्दिर के ठीक पार्श्व में सात तिबारे बनवाये गये एवं मन्दिर के दक्षिण में तालाब का निर्माण भी हुआ, जिसका शिलान्यास भक्तराज मोहनदासजी ने अपने कर-कमलों से सम्वत् 1848 में किया। प्रमाण स्वरूप 'बोदले तालाब' के निकट स्थित स्तम्भ उत्कीर्ण किया हुआ है—

''रामजी हनुमानजी
समत 1848 तलाब...
नीव भ...मोवन
दास महाराज''

कुछ समय पूर्व 1 अक्टूबर सन् 1952 ई. में श्री राजस्थान अकाल सेवा समिति ने इसी तालाब का जीर्णोद्धार करवाया। इस बात का उल्लेख तालाब के उसी स्तम्भ पर अंकित है। उक्त सात तिबारियों में से एक तिबारी अभी भी मन्दिर के दक्षिण पर दृष्टव्य है।

भक्तराज मोहनदासजी ने अपने भानजे उदयरामजी को पूजा-कार्य सौंप दिया और स्वयं धोरे पर स्थित अपनी कुटिया पर निवास करते हुए तपस्यारत् हो गये। एक दिन जब उदयरामजी अपने परिवार सहित घर पर बैठे हुए थे, उन्होंने अपने पुत्र ईसर से मोहरों वाला झावला (मिट्टी का बरतन) लाने को कहा। सम्भावना है कि पात्र को पहचानने की सुविधा के लिए पात्र का यह नाम ऊपर मोहरों से अंकित होने के कारण रख लिया होगा, किन्तु इस नाम से सुनने वाला बड़ी आसानी से भ्रम में आ सकता है कि मोहरों वाला पात्र अर्थात् पात्र में मोहरें भरी होंगी। विधि के विधान को कौन जान सकता है, किसे ज्ञात था कि यह नाम कितना घातक हो सकता है? जब उदयरामजी ने

ईसर से उक्त पात्र लाने को कहा तो पास ही में एक डाकू केसरसिंह छिपा था, उसके कानों में भी उक्त पात्र का नाम पड़ा। उसने धन-लोभ के वशीभूत होकर उदयरामजी पर आक्रमण करके शस्त्र-प्रहार से उन्हें घायल कर दिया।

जब परिवारजनों तथा गाँव के निवासियों को उक्त दुर्घटना का ज्ञान हुआ, तब वे साधना में लीन भक्त शिरोमणि मोहनदासजी के निकट गये। पहुँच कर सभी लोगों ने उनसे उक्त घटना का वर्णन करते हुए वहाँ चलने का निवेदन किया, किन्तु श्री मोहनदासजी ने न तो घर जाना स्वीकार किया और न ही उस हत्यारे डाकू के पीछें जाकर उससे बदला लेने की कोई इच्छा ही प्रकट की। तब ग्राम के बड़े-बूढ़े लोगों ने उनसे कहा कि तुम तो रूल्याणी से भानजे की रक्षा करने के वास्ते ही यहाँ आये थे और तुम्हारी स्वर्गवासी बहिन का वही लाडला पुत्र आज लुटेरों द्वारा आहत होकर लगभग मृतप्राय पड़ा है, धिक्कार है तुम्हारी भक्ति को! इस तरह से तमाम बुजुर्गों ने उन्हें बार-बार धिक्कारा। इस प्रकार से बार-बार उत्तेजित करने पर वे उठे और वीर परशुराम की तरह रौद्र-रूप में आवेशित हो गए। तत्काल घर पहुँचकर उदयराम की बुरी हालत देखकर द्रवित हो गये और सिंह का रूप धारण करके पाटोदा की ओर दौड़ पड़े। रास्ते में उन्होंने विचार किया कि उन्हें गुरुभाई राघवदास जी मिले तो वे जरूर ही टोकेंगे, अत: मोहनदासजी ने सर्प रूप धारण कर लिया कि सर्प रूप में डाकू को डसकर बदला ले लूँगा। वे कड़बी (बाजरे की फसल) के बीच से होकर जाने लगे तो गुरुभाई राघवदासजी ने सामने उपस्थित होकर सर्प वेशधारी मोहनदासजी को रोक दिया और कहने लगे कि ठहरो भैया मोहन, ठहरो, तुम यह क्या करने जा रहे हो? यह कार्य तुम्हारे जैसे सन्त पुरुषों के लिए नहीं है। आपकी मति भ्रमित हो गई है क्या? तुम तो क्षमादान देने वाले अहिंसा के पुजारी हो। फिर इस प्रकार से क्रोधावेश में क्यों आते हो? सब कुछ अपने इष्टदेव प्रभु बालाजी महाराज पर छोड़कर अपने रूप में वापस आ जाओ। इस तरह से समझाते हुये अपने कमण्डल से शीतल जल छिड़ककर मोहनदासजी के क्रोधावेग को शांत कर दिया।

तत्पश्चात् दोनों गुरुभ्राता डाकू से मिलने उसके घर गये, किन्तु घर पहुँचने पर उक्त डाकू से भेंट नहीं हुई। डाकू केसरसिंह की माँ घर पर थी, उसने कहा कि हे महाराज! मेरा पुत्र मेरा कहा नहीं सुनता है, मैं तो ऐसे पुत्र की अपेक्षा बांझ रहती तो ठीक था।

इतना सुनकर भक्त राघवदासजी जो कि आशुकवि भी थे, उन्होंने निकट में खड़े काले नारे अर्थात् काले बैल पर थपकी मारकर पाटोदा ठाकुर सांवल सिंह के पुत्रों के बारे में संकेत किया और कहा कि—

काला नारा कर कड़कड़ी ल साँवळ के साताँ न।
मिंदराबाजी खेलसी जद जड़ामूळ सूँ जाता न॥

इस प्रकार शाप देकर दोनों गुरुभाई वापस अपने घर आ गये वहाँ आने पर उन्हें प्रभू हनुमानजी की महान् कृपा से उदयरामजी पूर्णरूप से स्वस्थ मिले। इस पर सब लोग आनंदित होकर भक्ति एवं श्रद्धा सहित श्री हनुमानजी की जय-जयकार करते हुए भक्तिभाव से संकीर्तन करने लगे।

कालान्तर में लगातार एकान्तवास करते हुए साधना में ही रत् रहने की प्रबल अभिलाषा के कारण भक्त मोहनदासजी ने अपने भानजे उदयरामजी को अपना चोला (वस्त्र) प्रदान किया एवं मंदिर हेतु प्रथम पुजारी के रूप में नियुक्ति की। तब से मोहनदासजी

द्वारा दिये गये चोले पर ही विराजमान होकर पूजा की रीति चली आ रही है और वर्तमान में भी है। इसी के साथ जनश्रुति के अनुसार तत्कालीन सौभाग्य देसर (शोभासर) के ठाकुर धीरजसिंहजी, सालासर के ठाकुर सालमसिंहजी एवं तैतरवाल जाट समुदाय के वयोवृद्धों की उपस्थिति में भूमि आदि सम्बन्धी पट्टा की लिखा-पढ़ी की गयी।

कुछ समय बाद मोहनदासजी ने भूलोक में अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मानते हुए जीवित अवस्था में समाधि ग्रहण करने की ठान ली। इस अवसर पर समस्त स्थानीय निवासियों, अनेकों साधु-सन्तों सहित गुरुभाइयों के साथ श्रीबालाजी भी पधार गये।

समाधि ग्रहण करने के पूर्व भक्त शिरोमणि मोहनदासजी ने अपने इष्टदेव श्रीहनुमानजी से विनती की- हे सखा! मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरी बहन कान्ही बाई के लाड़ले पुत्र उदयराम को गृहस्थ रहते हुए मंदिर में पूजन कार्य करते रहने एवं दीर्घायु होने का शुभ आशीर्वाद प्रदान करें।

तत्पश्चात् सम्वत् 1850 की वैशाख शुक्ल त्रयोदशी को प्रात:काल शुभ बेला में भक्त शिरोमणि श्री मोहनदासजी जीवित समाधिस्थ हो गये। समाधि ग्रहण के समय मंद गति से जल की फुहारों के साथ पुष्पों की वर्षा होने लगी थी। मानो मारुतिनन्दन श्रीहनुमानजी का आशीष उनके शीश पर समाहित हो रहा हो। दसों दिगन्त स्तब्ध-से रह गये थे इसी के साथ स्वर्गवासी बहन कान्ही बाई का आशीष भी अनुज को मिल रहा था।

पं. उदयरामजी पुजारी अपने पूज्य मामाजी को अंजुलि भरकर पुष्पों की वर्षा करते हुए पुष्पार्पण कर रहे थे। उपस्थित जन-समुदाय के सौभाग्य का तो कहना ही क्या, जिन्होंने इस दिव्य अलौकिक दृश्य का रसपान अपने चक्षुओं से किया। ऐसे कलिकाल में उक्त अलौकिक घटना का होना एवं भक्त-शिरोमणि, पवनपुत्र हनुमानजी के सखा तुल्य अर्पित भक्त श्रीमोहनदासजी महाराज जैसी शख्सियत का होना स्वयं में एक दैवीय घटना है।

मुख्य भवन श्रीसालासर-हनुमानजी के मंदिर की पूर्वी दिशा में 'मोहन चौक' में ही भक्तप्रवर मोहनदासजी महाराज की समाधि का स्मारक-भवन अवस्थित है। इसी के निकट ही लगा हुआ दक्षिण दिशा में उनकी भगिनी कान्ही बाई का स्मारक भी है।

आगन्तुक श्रद्धालु भक्तगणों का समुदाय दोनों के चरण-चिन्हों पर शीश नवाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है एवं उनका शुभ आशीर्वाद ग्रहण करता हैं।

सम्वत् 1852 में ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी दिन शनिवार की शुभबेला में प्रधान पुजारी पंडित उदयरामजी के द्वारा सर्वप्रथम उक्त छतरियों का निर्माण कार्य कराया गया। मोहन-मंदिर के प्रवेश द्वार पर एक प्राचीन प्रस्तर-स्तम्भ (कीर्ति-स्मारक) स्थित है, जिसके ऊपर कुछ पंक्तियाँ प्राचीन लिपि में अंकीर्ण हैं।

इस समय उक्त स्मारक समाधि-स्थल को संगमरमर से सुसज्जित कराकर एक सुंदर स्वरूप प्रदान करा दिया गया है। इसके निकट ही ऊपर एवं नीचे की मंजिलों में संत-समुदाय के एकाकी निवास के लिए कुटियों का भी निर्माण करा दिया गया है।

इसी मोहन-मंदिर में प्रतिदिवस प्रात:कालीन एवं संध्याबेला में आरती होती है तथा प्रसाद का वितरण होता है। प्रति वर्ष आश्विन मास में कृष्णा त्रयोदशी को भक्तप्रवर श्री मोहनदासजी महाराज के श्राद्ध को बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया जाता है। इस श्राद्ध के प्रसाद की बड़ी महत्ता है।

श्री बालाजी मन्दिर के दक्षिण द्वार पर भक्तप्रवर मोहनदासजी की तपस्या का स्थान है। इसको घूणा कहते हैं। यहाँ पर उसी समय से अखण्ड अग्नि की धूनी जल रही है। इसकी विभूति (भस्म) का बड़ा महत्त्व माना जाता है।

एक बार संवत् 1974 में अतिवृष्टि के कारण घूणे के चारों ओर पानी ही पानी एकत्रित हो गया। तत्कालीन वयोवृद्ध पुजारी लालजी को चिन्ता में देख भक्तप्रवर स्वयं प्रकट होकर बोले- तुम क्यों सोच करते हो? धूणी की व्यवस्था तो मैं ही करूँगा। उन्होंने बताया कि मैंने इस जाल वृक्ष के कोटर में एक छिद्र कर दिया है, जो मेरी गुफा में जाकर खुलता है। चिन्ता मत करो, पानी उसी में जाने लग गया है।

पुजारीजी द्वारा कान्ही दादीजी के दर्शनों की इच्छा व्यक्त की गई, तब उन्होंने कहा कि आगे तुम्हें डर लगेगा, बाई अभी भजन-पूजन कर रही है। ऐसा कहकर अन्तर्ध्यान हो गये।

प्रात:काल आस-पास का जल छिद्र द्वारा गुफा में समा गया। चारों ओर सूखा स्थान देखकर सभी ने प्रसन्न होकर भक्त एवं भगवान नाम का कीर्तन किया।

धान ओबरै घालद्यो गाढ़ो देवो निपाय।
ज्यू चावै ज्यूं काड़ज्यो थारै कदे निमड़ नाय॥

'श्री मोहनदास वाणी' की उपरोक्त पंक्तियों एवं जनश्रुति के अनुसार श्रीमोहनदासजी के द्वारा रखे हुए दो अनाज भरने के कोठले थे, जिनमें कभी समाप्त न होने वाला अनाज भरा रहता था। इन कोठलों के सम्बन्ध में श्री मोहनदासजी का निर्देश था कि इन्हें खोलकर कभी नहीं देखा जाये, आवश्यकतानुसार नीचे के द्वार से अनाज निकाल कर उपयोग में लेते रहें, परन्तु किसी के द्वारा उनके आदेश की अवहेलना करने के कारण उन कोठलों की चमत्कारिक शक्ति समाप्त हो गई।

श्री मोहनदासजी महाराज के समय से मंदिर में अखण्ड ज्योति (दीप) प्रज्वलित है। मंदिर में श्री मोहनदासजी महाराज के पहनने के कड़े भी रखे हुए हैं।

सम्वत् 1860 में लक्ष्मणगढ़ के रहने वाले सेठ रामधन चोखानी की मनोकामना श्री हनुमानजी की कृपा से पूर्ण हुई तो वे अपने पुत्र के संग जात-जड़ूले के लिए सालासर पधारे। यहाँ आकर उन्होंने मंदिर को वृहद् रूप में बनवाने का संकल्प किया। जनश्रुति के अनुसार जब कारीगर यहाँ आ गये तो सेठजी ने कारीगरों से श्री बालाजी की मूर्ति इतनी ऊँची स्थापित करने को कहा कि मूर्ति के दर्शन पाँच कोस की दूरी से प्राप्त हो सकें, किन्तु जैसे ही कारीगर मूर्ति को ऊँची करने लगे, अचानक पंखदार भूरे रंगवाले कीड़े-मकोड़े न जाने कहाँ से आकर लोगों को काटने लगे। तब तत्कालीन वयोवृद्ध पुजारी ने कहा कि श्रीबालाजी महाराज की इच्छा के विरुद्ध करना उचित नहीं है, सर्व निर्णयानुसार तब उक्त प्रतिमा को यथास्थिति में रहने दिया गया।

सेठ चेजारा पुजारा, सोच सारा सो गया।
रात फाटी छात जहाँ, अध हाथ अन्तर रहो गया॥
देख सब राजी भये, मन का सभी दु:ख खो गया।
निज छोड़ मंदिर चौतरफ, दहलान दुगुआं हो गया॥

इस घटना-चक्र के बारे में विचार-विमर्श करते हुए देर रात्रि में सेठजी, सभी कारीगर एवं पुजारीजी आदि सब वहीं निद्रा-मग्न हो गये। अचानक मध्यरात्रि-बेला में छत बीच से फट गई और लगभग डेढ़ फुट चौड़ी दरार उत्पन्न हो गई। मूल मणि-मंदिर को छोड़कर चारों ओर दालान हो गया। प्रात: यह सब दृश्य अवलोकन करके सभीजन आनंदित हुये एवं इसके उपरांत डालूराम राजगीर के द्वारा मण्डप के चहुँ ओर परिक्रमा, दुछत्ती एवं बरामदा बना

दिया गया। इस निर्माण के पश्चात् मंदिर बड़ा ही सुंदर एवं विशाल दिखाई देने लगा।

उक्त घटना के पश्चात् लगातार सेठ-साहूकारों द्वारा अपनी मनोवांछित कामना पूर्ण होने पर उत्तरोत्तर मणि-मंदिर को भव्य रूप प्रदान किया जाता रहा है। केवल इतना ही नहीं मंदिर के चारों ओर मुसाफिर भक्तों के ठहरने, विश्राम आदि के लिए पर्याप्त रूप से धर्मशालाएँ, विश्रामशालाएँ आदि निर्मित हैं। (जिनको विस्तृत रूप से अगले पृष्ठों में वर्णित किया जा रहा है।) मंदिर के पूर्वी द्वार पर मोहनमंदिर, मोहन-चौक तथा मोहनदासजी का कूप है। मोहन-मंदिर के सामने ही अबोहर वालों की बड़ी धर्मशालाएँ हैं। इसी के साथ दोनों ओर कतारबद्ध भवन अनेकों महाजनों द्वारा निर्मित कराये गये हैं। इन सभी श्रृंखलाओं को जोड़ने वाले बड़े-बड़े बरामदे व गलियारे हैं। इन बरामदों में अनेकों सुंदर, धार्मिक तथा नयनाभिराम चित्र बने हुए हैं। इसके दूसरी ओर ब्रह्मपुरी तथा सवामणी आदि के निमित्त विशाल भोज्य-पदार्थ तैयार करने हेतु विशाल कुंड एवं रसोवड़े (रसोई घर) निर्मित हैं।